अध्याय 4

भारत में औपनिवेशिक काल

आरंभिक काल के ब्रिटिश/ब्रितानी लगभग दो शताब्दी पूर्व बंगाल तथा अन्य समकक्ष अध्यक्षाधीन मंडलों (प्रेसीडेंसी) को इस देश और इसकी प्रजा को लूट के लिए शिकार के रूप में देखते थे... उत्तरवर्ती अंग्रेजों के अधीन प्रशासकों के रूप में... यह लूट आज किसी भी पूर्ववर्ती काल से कहीं अधिक उग्र रूप में चल रही है... आधुनिक इंग्लैंड भारतीय संपदा से महान बना है... संपदा सदैव शक्तिशाली लोगों के बल और कौशल द्वारा छीनी जाती रही है।

— विलियम डिग्बी (1901)

चित्र 4.1 — यूनानी चित्रकार स्पिरिडियोन रोमा द्वारा वर्ष 1778 में निर्मित चित्र जिसका शीर्षक है, 'द ईस्ट ऑफरिंग इट्स रिचेज टू ब्रितानिया' (इस चित्र पर अध्याय में आगे चर्चा की गई है)।

महत्वपूर्ण प्रश्न ?

1. *उपनिवेशवाद क्या है?*
2. *यूरोपीय शक्तियों को भारत की ओर आकर्षित करने वाले कारण क्या थे?*
3. *औपनिवेशिक काल से पूर्व तथा उसके दौरान भारत की आर्थिक एवं भू-राजनैतिक स्थिति क्या थी?*
4. *ब्रितानी (ब्रिटिश) औपनिवेशिक प्रभुत्व का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा?*

0883CH04

© NCERT not to be republished

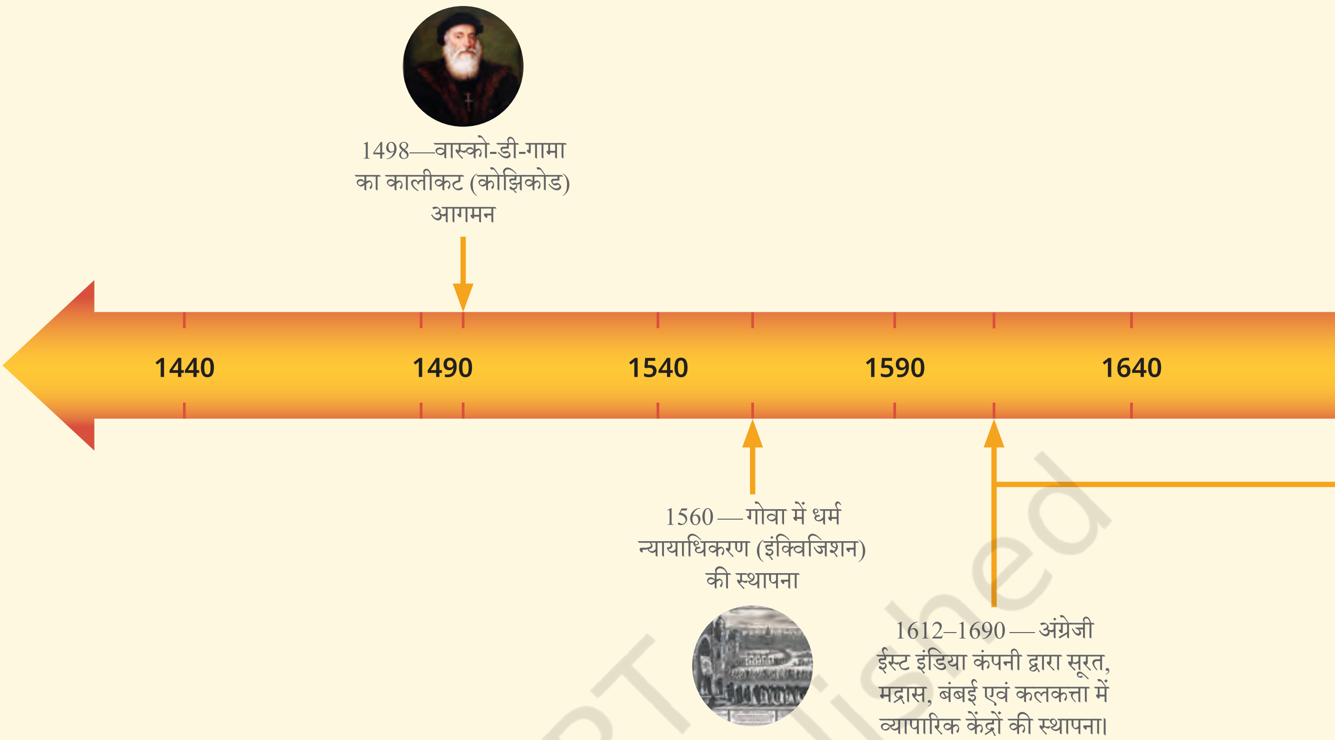

चित्र 4.2

पिछले अध्याय में हमने देखा कि मराठों ने मुगल साम्राज्य को अत्यधिक दुर्बल कर दिया, किंतु 19वीं शताब्दी के आरंभ में वे स्वयं ब्रिटिश सेना द्वारा पराजित हो गए। तथापि, भारत के ब्रिटिश साम्राज्य की 'मुकुटमणि' बनने का कारण केवल सैन्य अभियान ही नहीं था। वास्तव में भारत ब्रिटिश साम्राज्य का सबसे विशाल उपनिवेश था।

उपनिवेशवाद का युग

इस प्रसंग पर पहुँचने से पूर्व हमें कालावधि में थोड़ा पीछे जाकर उपनिवेशवाद के स्वरूप पर विचार करना आवश्यक है। इसकी सामान्य परिभाषा यह है कि जब एक देश किसी अन्य प्रदेश पर अधिकार कर वहाँ अपनी बस्तियाँ स्थापित करता है और अपना राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक तंत्र आरोपित करता है, तब उसे उपनिवेशवाद कहते हैं। यह कोई नवीन घटना नहीं है। उपनिवेशवाद की परंपरा प्रथम सहस्राब्दी सा.सं पू. के महान साम्राज्यों के काल तक पहुँचती है। प्रथम सहस्राब्दी सा.सं. में ईसाई तथा इस्लामी धर्मों के प्रसार के साथ-साथ जिन क्षेत्रों को नए धर्मों में परिवर्तित किया गया, वहाँ का उपनिवेशीकरण भी हुआ।

© NCERT not to be republished

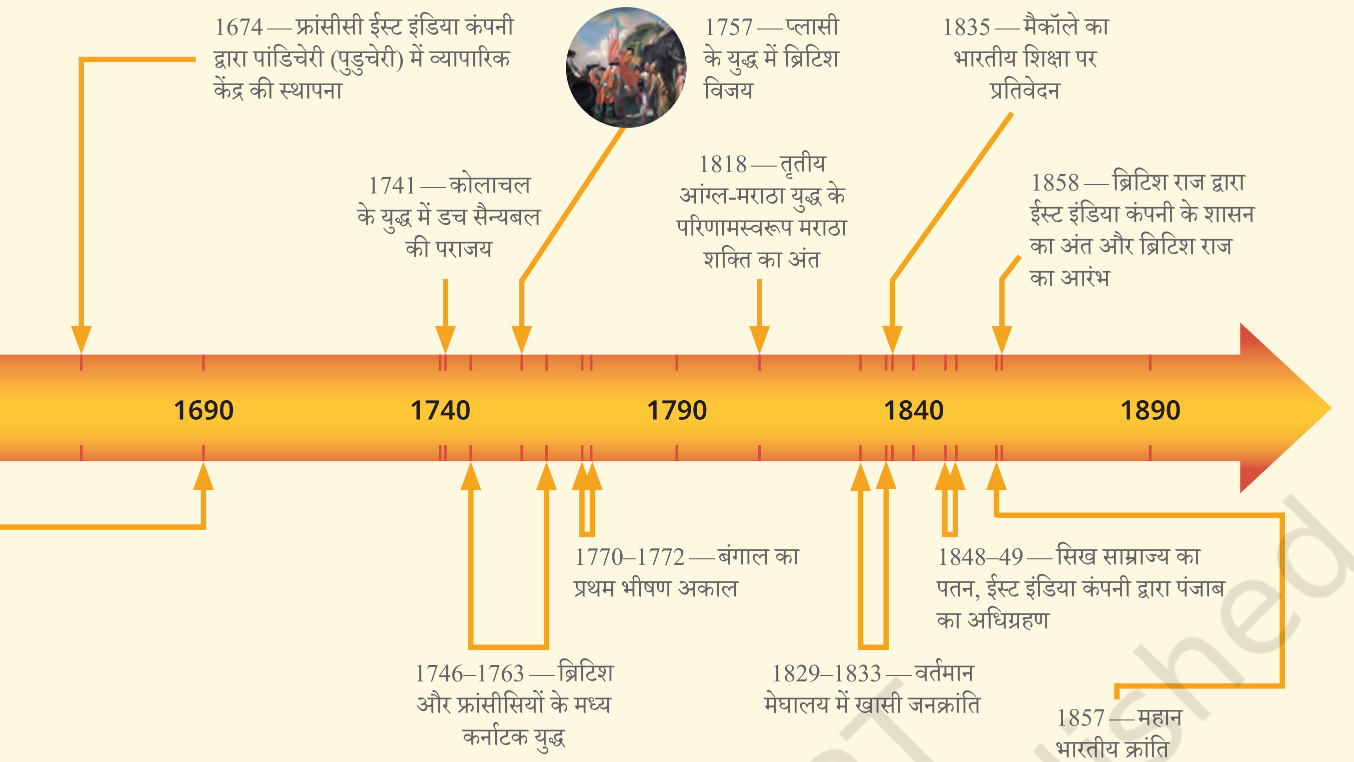

© NCERT not to be republished

परंतु 'औपनिवेशिक युग' सामान्यत: 15वीं शताब्दी से आरंभ हुए यूरोपीय विस्तार को इंगित करता है जिसने कुछ ही शताब्दियों में विश्व के विशाल भूभागों तक अपना प्रसार किया। उच्च कक्षाओं में आप जानेंगे कि यूरोपीय शक्तियों— विशेषकर स्पेन, पुर्तगाल, ब्रिटेन, फ्रांस और नीदरलैंड ने अफ्रीका, एशिया, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया तथा प्रशांत महासागर के अनेक द्वीपों पर अधिकार कर उपनिवेश स्थापित किए। ये विजय अभियान प्राय: सैन्य बल से संपन्न होते थे, जिसमें मूल निवासियों का नरसंहार अथवा **दासत्व** सम्मिलित था।

दासत्व
किसी व्यक्ति को दास बना देने की क्रिया।

ऐसे अभियानों के लिए उन राष्ट्रों को किसने प्रेरित किया? यूरोपीय शक्तियों के बीच राजनैतिक प्रतिस्पर्धा ने भौगोलिक विस्तार तथा वैश्विक प्रभाव के लिए एक प्रतिस्पर्धा उत्पन्न कर दी। भौगोलिक विस्तार के स्पष्ट आर्थिक लाभ थे— नए प्राकृतिक संसाधनों की प्राप्ति, नए बाजारों तथा नए व्यापार मार्गों तक पहुँच और प्राय: लूट भी, जैसा कि हम आगे देखेंगे। स्थानीय जनसंख्या का ईसाई धर्म में परिवर्तन एक अन्य प्रबल प्रेरणा थी। एक अपेक्षाकृत गौण किंतु महत्वपूर्ण कारण था वैज्ञानिक जिज्ञासा— पृथ्वी के भौगोलिक स्वरूप एवं प्राकृतिक इतिहास का ज्ञान संचित करने हेतु अज्ञात भूभागों का अन्वेषण करने की अभिलाषा।

असुरीकरण (डेमोनाइज)
किसी व्यक्ति या समूह को अत्यंत नकारात्मक रूप में चित्रित करना।

यद्यपि उपनिवेशक प्राय: यह दावा करते थे कि उनका 'सभ्यकारी अभियान' उपनिवेशित जनसमुदायों के लिए 'उन्नतिकारक' है और वे इन्हें 'असभ्य','आदिम' अथवा 'बर्बर' कहकर उनका **असुरीकरण** करते थे, किंतु वास्तविकता इससे सर्वथा भिन्न थी जिसमें निहित था— स्वतंत्रता का ह्रास, उपनिवेशकों द्वारा संसाधनों का दोहन, पारंपरिक जीवन-पद्धतियों का विनाश तथा विदेशी सांस्कृतिक मूल्यों का आरोपण।

चित्र 4.3 — एक व्यंग्यचित्र जिसमें एक ब्रिटिश उद्योगपति अफ्रीका के मानचित्र पर हाथ में टेलीग्राफ का तार लिए पैर फैलाकर खड़ा है (एडवर्ड लिनली सांबोर्न द्वारा चित्रित, पंच नामक पत्रिका, लंदन, 1892)।

यह सत्य है कि औपनिवेशिक युग ने विश्व को परस्पर जोड़ा, अर्थव्यवस्थाओं एवं प्रौद्योगिकियों की तीव्र वृद्धि हुई, किंतु इसका लाभ प्राय: उपनिवेशकों को ही मिला। अनेक ऐतिहासिक अध्ययनों ने यह प्रमाणित किया है कि उपनिवेशित समुदायों को अत्यंत कष्ट भोगने पड़े और विपन्नता सहनी पड़ी।

आइए पता लगाएँ

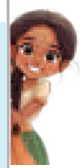

आपके विचार में यह व्यंग्यचित्र (चित्र 4.3) क्या अभिव्यक्त करने का प्रयास कर रहा है? (ध्यान रखें कि टेलीग्राफ, जिसने त्वरित संचार को पहली बार संभव बनाया, उस समय हाल ही में आविष्कृत हुआ था)। चित्र के विभिन्न तत्वों का विश्लेषण कीजिए।

अनेक उपनिवेशित क्षेत्रों में उपनिवेशिकों के विरुद्ध प्रतिरोध की भावना प्रबल हुई। 20वीं शताब्दी के मध्य में, विशेषकर द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात, उपनिवेशवाद का अंत होने लगा। अनेक कारकों ने विश्वव्यापी उपनिवेशवाद को तीव्रता से समाप्त करने में योगदान दिया और अधिकांश उपनिवेशित राष्ट्र स्वतंत्र हुए। यहाँ हम भारत के विशेष प्रसंग पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

भारत में यूरोपीय

भारत का व्यापार यूनानियों और रोमनों के साथ लगभग दो सहस्राब्दियों पूर्व से चलता आ रहा था। भारतीय वस्तुएँ, जैसे— मसाले, कपास, हाथी-दाँत, रत्न, चंदन, सागवान की लकड़ी, वूट्ज स्टील तथा अन्य वस्तुओं की भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में अत्यधिक माँग थी। 16वीं शताब्दी तक, जब यूरोपीय शक्तियों ने भारतीय उपमहाद्वीप की ओर नौपरिवहन प्रारंभ किया, तब भारत एक सशक्त एवं समृद्ध आर्थिक तथा सांस्कृतिक केंद्र था। इतिहासकारों (विशेषतया अर्थशास्त्री एंग्स मैडिसन) का आकलन है कि इस संपूर्ण काल में भारत का योगदान विश्व के **सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.)** में कम-से-कम एक-चौथाई था, जिससे यह चीन के साथ (जिसका योगदान भी समान स्तर का था) विश्व की दो सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक बन गया। यह उल्लेखनीय है कि 16वीं शताब्दी से अनेक यूरोपीय यात्री भारत को 'समृद्धशाली' बताते थे और इसकी विनिर्माण क्षमताओं, विविध कृषि उत्पाद तथा व्यापक आंतरिक एवं बाह्य व्यापारिक संजालों का वर्णन करते थे। तथापि, इसी आर्थिक संपन्नता ने भारत को यूरोपीय औपनिवेशिक महत्वाकांक्षाओं के लिए एक आकर्षक लक्ष्य बनाया।

सकल घरेलू उत्पाद
किसी देश (या इस प्रसंग में संपूर्ण विश्व) द्वारा एक वर्ष में उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं के मूल्य का माप।

आइए, अब हम भारत में यूरोपीय शक्तियों के प्रथम औपनिवेशिक प्रयासों का अवलोकन करें।

पुर्तगाली— व्यापार एवं उत्पीड़न

पुर्तगाली अन्वेषक एवं नौसंचालक वास्को-डी-गामा ने मई 1498 में कप्पड़ तट (केरल में कोझिकोड के समीप) पर पहुँचकर भारत में यूरोपीय उपनिवेशीकरण का मार्ग प्रशस्त किया।

© NCERT not to be republished

कुछ शताब्दियों पूर्व, वर्तमान दक्षिण कर्नाटक में स्थित बंदरगाह नगर उल्लाल रानी अब्बक्का प्रथम के नेतृत्व में एक प्रमुख व्यापारिक केंद्र था। 16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पुर्तगालियों ने बारंबार इस नगर पर अधिकार स्थापित करने का प्रयास किया, किंतु रानी ने पड़ोसी राज्यों के साथ रणनीतिक गठबंधन बनाकर उनके प्रयासों को विफल कर दिया। अंततः वह बंदी बना ली गईं और कारागार में वीरगति को प्राप्त हुईं। उनकी उत्तराधिकारी रानी अब्बक्का द्वितीय के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने नारियल के खोलों से अग्नि गोले बनाकर पुर्तगाली नौसेना के अनेक पोतों को अग्नि के सुपुर्द कर दिया। इन दोनों वीरांगनाओं की प्रेरणादायक गाथाएँ आज भी कर्नाटक के पारंपरिक नृत्य-नाटक 'यक्षगान' के माध्यम से स्मरण की जाती हैं।

यद्यपि उसका स्वागत भलीभाँति हुआ, तथापि उसके आक्रामक आचरण के कारण स्थानीय शासकों से सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित नहीं हो सके। चार वर्ष पश्चात अपनी द्वितीय यात्रा के समय उसने भारतीय व्यापारियों को बंदी बनाकर उन्हें यातनाएँ दीं, उनका वध किया और समुद्र से कालीकट पर बमबारी की। 1510 में पुर्तगालियों ने गोवा, जो बाद में भारत में उनके उपनिवेश की राजधानी बना, सहित मालाबार तथा कोरोमंडल तट पर अनेक व्यापारिक केंद्रों पर आधिपत्य स्थापित किया।

पुर्तगालियों ने एक व्यवस्था लागू की जिसे कार्टेज (अनुज्ञा-पत्र) कहा जाता था। इसके अंतर्गत अरब सागर में संचरण करने वाली समस्त नौकाओं को पुर्तगालियों से नौवहन की अनुमति ग्रहण करनी पड़ती थी। जिन नौकाओं के पास यह अनुमति-पत्र नहीं होता था, उन्हें जब्त कर लिया जाता था। इस समुद्री प्रभुत्व के माध्यम से पुर्तगालियों ने भारत और यूरोप के मध्य मसालों के व्यापार पर लगभग एक शताब्दी तक एकाधिकार स्थापित कर लिया।

भारत में पुर्तगालियों की उपस्थिति वाणिज्यिक शोषण के साथ-साथ धार्मिक उत्पीड़न से भी जानी जाती है। गोवा में उन्होंने 1560 में **धर्म-न्यायाधिकरण** की स्थापना की। इसके अंतर्गत उन हिंदुओं, मुसलमानों, यहूदियों तथा ईसाई धर्मांतरितों को कठोर दंड दिए जाते थे, यदि वे अपने मूल धर्म का पालन करते पाए जाते थे।

चित्र 4.4 — 1498 में कोझिकोड में वास्को-डी-गामा के आगमन को दर्शाता शिलापट्ट

धर्म-न्यायाधिकरण (इंक्विजिशन)
यह रोमन कैथोलिक चर्च द्वारा स्थापित एक विशेष न्यायाधिकरण था, जिसका कार्य उन विधर्मी ईसाइयों पर निर्णय लेना था जिन पर चर्च की मान्यताओं के विरुद्ध मत रखने का संदेह होता था। लगभग 600 वर्षों तक संपूर्ण यूरोप में हजारों विधर्मियों को कठोर यंत्रणाओं के साथ मृत्युदंड दिया गया।

© NCERT not to be republished

ऐसे अत्याचारों के साथ-साथ बलात धर्मांतरण तथा अनेक हिंदू मंदिरों का विध्वंस भी किया गया और मूल निवासियों के साथ विविध प्रकार की क्रूरताएँ की गईं। (गोवा धर्म-न्यायाधिकरण को 1812 में समाप्त किया गया।)

डच— वाणिज्य और प्रतिस्पर्धा

डच 17वीं शताब्दी के आरंभ में भारत पहुँचे। पुर्तगालियों के विपरीत उनका प्राथमिक लक्ष्य व्यापारिक वर्चस्व, विशेषतया मसालों के व्यापार पर नियंत्रण स्थापित करना था। उन्होंने डच ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की जिसके व्यापारिक केंद्र भारत के विभिन्न भागों में स्थापित किए गए। पश्चिमी तट पर सूरत, भरूच, कोचीन (कोच्चि) तथा पूर्वी तट पर नागपट्टिनम और मसुलीपट्टनम (मछलीपट्टनम) प्रमुख थे। उनकी सबसे महत्वपूर्ण उपस्थिति केरल के मालाबार क्षेत्र में रही, जहाँ उन्होंने पुर्तगालियों को कई व्यापारिक केंद्रों से विस्थापित कर दिया।

चित्र 4.5 — कोलाचल के युद्ध (1741) के बाद त्रावणकोर के राजा मार्तण्ड वर्मा के समक्ष डच सेनाओं के आत्मसमर्पण का एक चित्रण (पद्मनाभपुरम् महल)।

© NCERT not to be republished

भारत में डचों की उपस्थिति अंततः सीमित हो गई। 1741 में कोलाचल के युद्ध में उनकी निर्णायक पराजय के पश्चात यह उपस्थिति तीव्र गति से क्षीण हो गई। इस युद्ध में त्रावणकोर के राजा मार्तण्ड वर्मा के अंतर्गत सैन्य बलों ने डचों को भूमि तथा समुद्र, दोनों पर पराजित किया (त्रावणकोर राज्य वर्तमान केरल के दक्षिण भाग में स्थित है)। यह युद्ध किसी एशियाई शक्ति द्वारा किसी यूरोपीय औपनिवेशिक शक्ति को सफलतापूर्वक पराजित करने का एक दुर्लभ उदाहरण है।

फ्रांसीसी— औपनिवेशिक आकांक्षाएँ

फ्रांसीसी भारत में अपेक्षाकृत बाद में प्रविष्ट हुए। उन्होंने वर्ष 1668 में सूरत में अपना प्रथम व्यापारिक केंद्र स्थापित किया और तत्पश्चात वर्ष 1674 में पांडिचेरी (पुडुचेरी) में द्वितीय केंद्र स्थापित किया। यहीं उन्होंने फ्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की तथा भारत में फ्रांसीसी साम्राज्य की स्थापना हेतु महत्वाकांक्षी योजनाएँ बनाईं।

1742 से 1754 तक भारत के फ्रांसीसी गवर्नर-जनरल रहे डुप्ले ने कई ऐसी औपनिवेशिक नीतियों का सूत्रपात किया जिन्हें आगे चलकर ब्रिटिशों ने भी अपनाया। विशेष रूप से, उन्होंने भारतीय सैनिकों को यूरोपीय युद्ध-कौशल में प्रशिक्षित किया और एक अनुशासित पैदल सेना (जिन्हें सिपाही या सिपोय कहा गया) गठित की। डुप्ले ने स्थानीय उत्तराधिकार संघर्षों में हस्तक्षेप कर कठपुतली शासकों के माध्यम से अप्रत्यक्ष शासन की नीति भी विकसित की।

भारत में फ्रांसीसी औपनिवेशिक महत्वाकांक्षाओं को अंततः कर्नाटक युद्धों (1746–1763) के दौरान नियंत्रण में लाया गया। ये युद्ध ब्रिटेन और फ्रांस के मध्य हुए संघर्षों की एक शृंखला थी। डुप्ले के नेतृत्व में फ्रांसीसी सेनाएँ प्रारंभ में सफल रहीं। उन्होंने 1746 में मद्रास (चेन्नई) पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। अंततः वे ब्रिटिशों के सम्मुख पराजित हो गए और उनकी भारत में उपस्थिति पांडिचेरी तथा कुछ क्षेत्रों तक सीमित रह गई।

डचों की भाँति और पुर्तगालियों के विपरीत, फ्रांसीसी शक्तियाँ भारत के सामाजिक और धार्मिक जीवन में अधिक हस्तक्षेप नहीं करती थीं। एक दुर्लभ अपवाद 1748 में पांडिचेरी के विशाल वेदापुरीश्वरन मंदिर का विध्वंस था, जिसे डुप्ले ने वहाँ के जेसुइट पादरियों एवं अपनी पत्नी के आग्रह पर ईसाई धर्म की प्रधानता स्थापित करने हेतु ध्वस्त कराया। सामान्यतः फ्रांसीसियों को भारत के साथ सीमित व्यापार से ही संतोष करना पड़ा।

not to be republished © NCERT

चित्र 4.6 — 1764 का एक योजना-पत्र, जिसमें दुर्गीकरण और ग्रिड-रूपरेखा पर आधारित पांडिचेरी नगर को दर्शाया गया है। समुद्र की ओर मुख किए हुए (नीचे की ओर) जो विशाल संरचना है, वह दुर्ग था। (इस योजना का ऊपरी भाग पश्चिमी दिशा की ओर संकेत करता है।)

अंग्रेजों का प्रवेश

ब्रिटेन ने लगभग दो शताब्दियों तक भारतीय उपमहाद्वीप पर शासन किया। यह कैसे संभव हुआ? इस विषय पर अनेक पुस्तकों में ब्रिटिश शासकों की रणनीतियों का विश्लेषण किया गया है। यहाँ हम पूरी कहानी बताने का प्रयास नहीं करेंगे अपितु भारत में उनकी औपनिवेशिक उपस्थिति के मुख्य पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

व्यापारियों से शासक बनने तक

भारत पर ब्रिटिश अधिग्रहण इतिहास की उल्लेखनीय घटनाओं में से एक है, जहाँ एक साधारण व्यापारिक कंपनी एक साम्राज्यवादी शक्ति में रूपांतरित हो गई। पारंपरिक विजयों के विपरीत, भारत पर ब्रिटिश अधिग्रहण क्रमिक, सुनियोजित तथा प्रायः वाणिज्यिक उपक्रम का रूप लिए हुए था न कि प्रत्यक्ष सैन्य आक्रमण का।

अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना एक व्यापारिक कंपनी के रूप में हुई थी। इसे महारानी एलिजाबेथ प्रथम द्वारा एक राजकीय अधिनियम (चार्टर) प्राप्त हुआ था, जिसने इसे विशेष अधिकार प्रदान किए जैसे कि निजी सेना गठित करने का अधिकार। तथापि इसके प्रतिनिधियों ने आरंभ में स्वयं को केवल व्यापारियों के रूप में प्रस्तुत किया। इसी कारण 17वीं शताब्दी में उन्हें भारत के तटीय क्षेत्रों, जैसे— सूरत, मद्रास, बंबई तथा कलकत्ता में बिना विशेष विरोध के अपने केंद्र स्थापित करने का अवसर मिला। स्थानीय शासकों को ये व्यापारिक केंद्र आपत्तिजनक नहीं लगे क्योंकि वे सामान्यतः विदेशी व्यापार का स्वागत करते थे। तथापि, इन साधारण प्रतीत होने वाले प्रयासों के पीछे कंपनी की दीर्घकालिक महत्वाकांक्षाएँ छिपी हुई थीं।

आइए पता लगाएँ

आगे पढ़ने से पहले, इस अध्याय के प्रथम पृष्ठ पर दिए गए चित्र को ध्यानपूर्वक देखिए। यह चित्र ईस्ट इंडिया कंपनी के लंदन स्थित मुख्यालय हेतु विशेष रूप से बनवाया गया था। इसकी लंबाई तीन मीटर से अधिक है। इस चित्र के प्रत्येक पक्ष का अवलोकन करें— उसमें प्रदर्शित व्यक्ति, वस्तुएँ, प्रतीक एवं भाव-भंगिमाएँ। चार या पाँच विद्यार्थियों के समूह में प्रत्येक समूह इस चित्र से प्राप्त संदेशों के विषय में अपने निष्कर्ष प्रस्तुत करे।

(हमारे उत्तर कुछ पृष्ठों के पश्चात दिए गए हैं, जब हम चित्र की ओर पुनः लौटेंगे किंतु अभी उन्हें न देखें!)

'फूट डालो और राज करो' की नीति

व्यापारी का छद्म रूप बनाए रखते हुए कंपनी के प्रतिनिधि स्थानीय शासकों से राजनीतिक संबंध स्थापित करते रहे। वे कुछ शासकों को अन्य के विरुद्ध सैन्य सहायता देकर भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करने लगे। इस प्रकार, वे विदेशी आक्रांताओं के स्थान पर सत्ता के मध्यस्थ बनकर उभरे। ब्रिटिशों ने भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रीय शासकों के मध्य प्रतिस्पर्धा तथा राज्यवंशों के उत्तराधिकार संबंधी विवादों का लाभ उठाया जिसे 'फूट डालो और राज करो' की नीति कहा गया। ब्रिटिश इस प्रकार के

© NCERT not to be republished

सामाजिक विभाजनों का शोषण करने में अत्यंत कुशल थे। उन्होंने भारतीय समाज में विद्यमान धार्मिक समुदायों के मध्य विद्वेष को पहचानकर उसे बढ़ावा भी दिया।

चित्र 4.7 — 1764 रॉबर्ट क्लाइव, प्लासी में ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना का नेतृत्व करते हुए, 1757 (विलियम हीथ द्वारा चित्रित, 1821)

प्लासी का युद्ध (1757) इस नीति का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है। जब बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला और ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों (जिनका नेतृत्व रॉबर्ट क्लाइव कर रहे थे) के मध्य तनाव उत्पन्न हुआ, तब क्लाइव ने नवाब के दरबार में असंतुष्ट तत्वों की पहचान की। क्लाइव ने नवाब के सेनापति मीर जाफर के साथ षड्यंत्र रचा और उसके साथ यह समझौता किया कि यदि वह नवाब के साथ विश्वासघात करेगा तो उसे नवाब के रूप में स्थापित कर दिया जाएगा। यह युद्ध पलाशी (अर्थात प्लासी, जैसा कि अंग्रेजों ने उच्चारित किया) में हुआ, जो वर्तमान कोलकाता से लगभग 150 किलोमीटर उत्तर में स्थित है। नवाब को कुछ फ्रांसीसी सेनाओं का समर्थन प्राप्त था, किंतु मीर जाफर की सेनाएँ— जो नवाब की सेना का प्रमुख भाग थीं, युद्ध में निष्क्रिय रहीं। इस प्रकार संख्या में कम होने पर भी ब्रिटिशों को विजय प्राप्त हुई। आज भी 'मीर जाफर' नाम भारत में 'विश्वासघाती' के पर्यायवाची के रूप में स्मरण किया जाता है।

स्वयं को एक राजनिर्माता के रूप में स्थापित करते हुए ईस्ट इंडिया कंपनी ने क्रमशः विशाल क्षेत्रों पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। 19वीं शताब्दी में उसने एक और कदम आगे बढ़ते हुए कुख्यात 'हड़प नीति' **डॉक्ट्रिन ऑफ लैप्स** की घोषणा की। इस नीति के अनुसार यदि किसी रियासत के शासक की मृत्यु उसके स्वाभाविक उत्तराधिकारी के बिना हो जाती है, तो उस राज्य का ब्रिटिश साम्राज्य में विलय कर दिया जाएगा। यह नीति जान-बूझकर हिंदू धर्म की दत्तकपुत्र परंपरा की उपेक्षा करती थी, जो भारतीय राजवंशों में उत्तराधिकार प्राप्त करने का एक वैध एवं स्वीकृत माध्यम था।

इसे अनदेखा न करें

भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक रियासती राज्य वह क्षेत्र था जो किसी भारतीय राजकुमार, महाराज अथवा नवाब के अधीन शासन में था, किंतु जिसने आंतरिक स्वायत्तता बनाए रखने के लिए ब्रिटिश संरक्षण एवं मार्गदर्शन स्वीकार कर लिया था। ऐसे सैकड़ों राज्य थे— कुछ बड़े (जैसे— हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर अथवा जम्मू और कश्मीर) तथा कुछ छोटे। भारत की स्वतंत्रता के समय लगभग 500 से अधिक रियासती राज्य विद्यमान थे, जो संपूर्ण उपमहाद्वीप के लगभग 40 प्रतिशत क्षेत्र में थे।

'हड़प नीति' के परिणामस्वरूप अनेक राज्यों का विलय हुआ, जिससे ब्रिटिशों की भौगोलिक सत्ता का विस्तार हुआ। इस नीति से भारतीय समाज के कुछ वर्गों में तीव्र असंतोष उत्पन्न हुआ, जिसने 1857 के विद्रोह की पृष्ठभूमि तैयार की (जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे)।

एक अन्य युक्ति, जिसे **सहायक संधि** (सब्सिडियरी अलाइंस) कहा जाता है, के अंतर्गत भारतीय शासकों के दरबार में एक ब्रिटिश रेसिडेंट नियुक्त किया जाता था, जो उन्हें आंतरिक अथवा बाह्य संकटों से सुरक्षा प्रदान करता था। इसके प्रत्युत्तर में भारतीय शासकों को अपने व्यय पर ब्रिटिश सैनिकों को रखना पड़ता था तथा विदेशी संबंध केवल ब्रिटिशों के माध्यम से ही संपन्न करने होते थे। यद्यपि यह प्रणाली रियासती राज्यों की प्रभुसत्ता को बनाए रखने का आभास कराती थी, परंतु वास्तविक सत्ता ब्रिटिशों को हस्तांतरित हो गई और भारतीय शासकों पर उनकी ही पराधीनता की कीमत का बोझ डाल दिया गया।

1798 में हैदराबाद का शासक इस प्रकार की संधि में सम्मिलित होने वाला प्रथम शासक था। शीघ्र ही, अन्य कई शासकों ने भी इसका अनुकरण किया। ये तथाकथित संधियाँ ब्रिटिशों को बिना प्रत्यक्ष शासन किए ही विशाल प्रदेशों पर नियंत्रण की अनुमति देती थीं, जिससे 'कम व्यय में साम्राज्य' की स्थापना संभव हो सकी। एक बार जब कोई राज्य इस प्रणाली में सम्मिलित हो जाता, तब उससे बाहर निकलना लगभग असंभव हो जाता था क्योंकि स्वतंत्र होने के किसी भी प्रयास में उसे ब्रिटिश सेना का सामना करना पड़ता था।

© NCERT not to be republished

स्वर्ग से नरक की ओर?

विनाशकारी अकाल

प्लासी की विजय के कुछ वर्षों बाद ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल, बिहार और ओडिशा— जो भारत के सबसे समृद्ध क्षेत्र थे, में राजस्व एकत्र करने का अधिकार प्राप्त हुआ। क्लाइव ने विशेषकर बंगाल को **पृथ्वी का स्वर्ग** कहा। कंपनी के प्रतिनिधियों ने अधिकतम कर वसूली की जबकि शासन या विकास में न्यूनतम निवेश किया, जिसके जनसामान्य पर विनाशकारी प्रभाव पड़े।

1770 से 1772 के मध्य, जब दो वर्षों तक फसल की विफलता पहले से ही लोगों को पीड़ित कर रही थी, उस समय बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा लगाए गए कठोर कर लक्ष्यों जिनमें कृषकों को, चाहे फसल हो या न हो, अपनी भूमि की उपज पर उच्च दर से नकद कर देना अनिवार्य था। इसके कारण एक भयावह अकाल की स्थिति उत्पन्न हुई। इस अकाल में लगभग एक-तिहाई जनसंख्या या अनुमानतः एक करोड़ लोग मारे गए। वास्तव में, कंपनी ने अकाल के समय न केवल कठोर कर-प्राप्ति लक्ष्य बनाए रखे अपितु भूमि-कर को और बढ़ा भी दिया। ऐसी क्रूरता की निंदा बाद में न केवल भारतीय लोगों द्वारा अपितु कुछ ब्रिटिश अधिकारियों और विद्वानों (जैसे इस अध्याय के आरंभ में उद्धृत विलियम डिग्बी) द्वारा भी की गई। उदाहरण के लिए, एक शताब्दी बाद ब्रिटिश अधिकारी डब्ल्यू.डब्ल्यू. हंटर ने लिखा—

> "जब देश प्रत्येक वर्ष एक पूर्ण अपव्यय में परिवर्तित हो गया, तब भी अंग्रेजी शासन लगातार अधिक भूमि-कर की माँग करता रहा... वर्ष 1770 की दाहक ग्रीष्म ऋतु में लोग मरते रहे। कृषक अपने पशुओं को बेचते रहे, वे कृषि उपकरणों को बेचते रहे, वे अपने अनाज के बीज खा गए, उन्होंने अपने पुत्रों और पुत्रियों को तब तक बेचा जब तक कोई खरीदार नहीं बचा। उन्होंने वृक्षों की पत्तियाँ और खेत की घास तक खा डाली... दिन-रात भूख से व्याकुल और रोगग्रस्त दरिद्रजन नगरों की ओर उमड़ते रहे।"

इस प्रकार की दुःखद अकाल घटनाएँ संपूर्ण ब्रिटिश शासनकाल में बार-बार घटित होती रहीं। उदाहरण के लिए, 1876–1878 के भीषण अकाल में मुख्यत: दक्कन के पठारी क्षेत्र में लगभग 80 लाख भारतीयों की मृत्यु हुई।

पृथ्वी का स्वर्ग
धार्मिक संदर्भ में, स्वर्ग। इस संदर्भ में एक आदर्श, समृद्ध या पूर्णतः सुखमय स्थान।

© NCERT not to be republished

चित्र 4.8 — एक ओर जहाँ लोग बड़ी संख्या में भूख से मर रहे थे, वहीं मद्रास के समुद्र तट पर निर्यात हेतु तैयार अनाज की बोरियाँ।

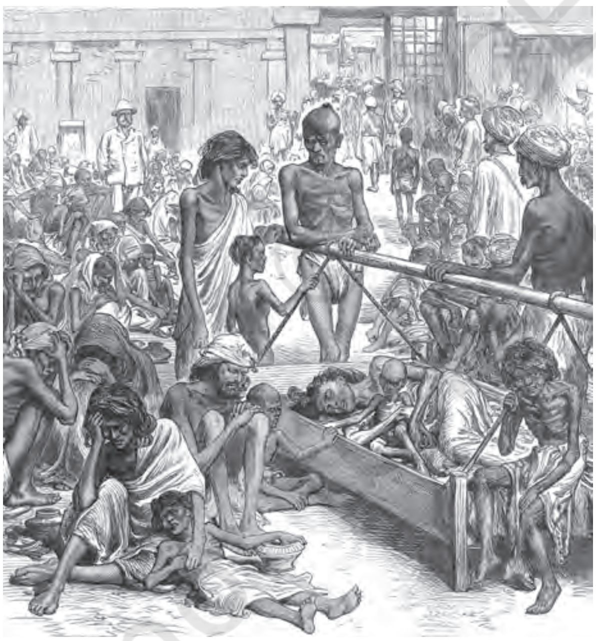

चित्र 4.9 — बैंगलोर (बेंगलूरु) में 1877 के अकाल के समय राहत हेतु प्रतीक्षारत जन (चित्र स्रोत— इलस्ट्रेटेड लंदन न्यूज)।

संकट की गंभीरता की उपेक्षा करते हुए कुछ भारतीय व्यापारी मूल्यवृद्धि की आशा में अपने भंडार को रोककर रखते थे, जिससे कृत्रिम अभाव उत्पन्न होता था। दूसरी ओर, ब्रिटिश शासन ब्रिटेन को निरंतर अनाज निर्यात करता रहा। अकाल के तीन वर्षों के दौरान केवल चावल ही प्रतिवर्ष लगभग दस लाख टन की मात्रा में निर्यात किया गया (चित्र 4.8 देखें)।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त ब्रिटिश शासन की 'मुक्त बाजार' की नीति, जिसके अंतर्गत वस्तुओं के मूल्य को स्वतंत्र रूप से घटने-बढ़ने दिया गया, उसने भी अकाल की भयावहता को और अधिक बढ़ाया। इस प्रकार, भारत के तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड लिटन ने 1876–1878 के अकाल के समय यह आदेश जारी किया कि "सरकार की ओर से अन्न के मूल्य घटाने के उद्देश्य से किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।"

उसी समय, 1876 में जब भीषण अकाल अपनी चरम अवस्था पर था, लिटन ने दिल्ली में एक भव्य दरबार का आयोजन किया, जिसमें '68,000 अधिकारियों, क्षत्रपों और महाराजाओं के लिए एक सप्ताह तक चलने वाला भोज' सम्मिलित था।

ब्रिटिश शासनकाल की संपूर्ण अवधि में घटित भीषण अकालों की सटीक संख्या लगभग 12 से 20 तक मानी जाती है। अनेक अकाल आयोगों और अन्य प्रतिवेदनों के अनुसार यह अनुमान लगाया गया है कि मानव-जीवन की हानि (यहाँ 'मानव' शब्द प्रयुक्त है, यद्यपि करोड़ों मवेशी व अन्य पशु भी मारे गए) की कुल संख्या 5 करोड़ से 10 करोड़ के मध्य रही, जो द्वितीय विश्वयुद्ध में मृत लोगों की संख्या के समकक्ष है।

ब्रिटिश शासन ने कुछ नगरों में अकाल-राहत शिविर तो आरंभ किए (चित्र 4.9) किंतु अल्प संख्या तथा अपर्याप्त आपूर्ति के साथ। कुछ अधिकारियों का तो यह मत था कि अकाल-राहत जान-बूझकर अत्यंत कम रखी जानी चाहिए। उदाहरण के लिए, 1878–80 के अकाल आयोग की एक टिप्पणी में लिखा गया— "यह सिद्धांत कि अकाल के समय दरिद्र जन सहायता की माँग करने के अधिकारी हैं... संभवत: यह विश्वास उत्पन्न करेगा कि वे हर परिस्थिति में सहायता पाने के अधिकारी हैं।"

हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि भारत में अकालों का इतिहास हर काल में रहा है, जो सूखा, बाढ़, युद्ध अभियानों एवं अन्य कारकों से उत्पन्न हुए, परंतु इतने व्यापक स्तर पर कभी नहीं। औपनिवेशिक काल में भारत, विशेषकर ग्रामीण भारत, गहन निर्धनता में डूब गया और कभी उबर नहीं पाया।

भारत की संपदा का निकास

जैसा कि हमने पूर्व में देखा, भारत का आर्थिक शोषण, ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति की आधारशिला था। 1895 में अमेरिकी इतिहासकार और राजनैतिक विचारक ब्रूक्स एडम्स ने लिखा—

> "प्लासी के युद्ध के तुरंत बाद, बंगाल की लूट लंदन पहुँचना आरंभ हुई और उसका प्रभाव लगभग तत्क्षण अनुभव किया गया क्योंकि सभी विद्वान इस तथ्य पर सहमत हैं कि औद्योगिक क्रांति का आरंभिक तिथि वर्ष 1760 है... संभवत: विश्व के इतिहास में किसी भी निवेश ने उतना लाभ नहीं दिया, जितना कि भारत की लूट से प्राप्त हुआ।"

दूसरे शब्दों में, एडम्स के अनुसार— ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति, जिसे भारी निवेश की आवश्यकता थी, आंशिक रूप से भारत से लूटी गई संपदा से संभव हो पाई (यह वाक्यांश अमेरिकी इतिहासकार विल ड्यूरेंट से उद्धृत है)।

© NCERT not to be republished

हाउस ऑफ कॉमन्स
हाउस ऑफ कॉमन्स यूनाइटेड किंगडम की द्विसदनीय संसद का निर्वाचित निम्न सदन है। इस सदन में निर्वाचित होने वाले प्रथम भारतीय दादाभाई नौरोजी थे।

एडम्स और डिग्बी जैसे विद्वानों से प्रेरणा लेते हुए एक प्रतिष्ठत राजनैतिक विचारक दादाभाई नौरोजी ने वर्ष 1901 में *पावर्टी एंड अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया* नामक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने ब्रिटिश सूत्रों से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर भारत से निष्कासित धन का अनुमान प्रस्तुत किया। लगभग उसी समय, एक इतिहासकार रोमेश चंद्र दत्त ने *ईकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया* में इसी प्रकार का अध्ययन किया। इन समस्त अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ कि उपनिवेशवादियों ने भारत से असंख्य अरब पाउंड की संपत्ति का निष्कर्षण किया। एक नवीनतम अनुमान (उत्सा पटनायक द्वारा) के अनुसार 1765 से 1938 तक की अवधि में भारत से लगभग 45 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर (वर्तमान मूल्य) का धन निष्कासित हुआ। यह राशि वर्ष 2023 में ब्रिटेन के सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 13 गुना है! यह धन केवल करों के माध्यम से ही नहीं, अपितु औपनिवेशिक सत्ता द्वारा भारतीयों से रेलवे निर्माण, टेलीग्राफ नेटवर्क तथा युद्धों पर होने वाले व्ययों की पूर्ति हेतु भी वसूल किया गया।

यदि यह संपत्ति भारत में ही निवेशित होती, तो स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत एक अत्यंत भिन्न स्वरूप वाला राष्ट्र होता।

आइए पता लगाएँ

आपके अनुसार 'अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया' से दादाभाई नौरोजी का क्या तात्पर्य है? (सूचना संकेत— वे 1892 में **हाउस ऑफ कॉमन्स** में संसद सदस्य थे।)

चित्र 4.10 — ब्रुक्स एडम्स

चित्र 4.11 — विलियम डिग्बी

चित्र 4.12 — दादाभाई नौरोजी

चित्र 4.13 — आर.सी. दत्त

आइए विचार करें

आइए, पुनः इस चित्र (चित्र 4.14) पर कुछ संकेतों के साथ उसके प्रतीकात्मक अर्थों पर ध्यान दें। बर्तानिया (ब्रिटेन का प्रतीकात्मक रूप), उपनिवेशों की अपेक्षा उच्च स्थान पर विराजमान

© NCERT not to be republished

चित्र 4.14 — 'पूर्व अपनी संपदा बर्तानिया को अर्पित कर रहा है' — चित्र में निहित प्रतीकवाद को समझना

है जो उसकी श्रेष्ठ सत्ता को प्रदर्शित करता है। इसके विपरीत उपनिवेशों की निम्न स्थिति और झुकी हुई मुद्रा पर ध्यान दें। क्या उपनिवेशों ने वास्तव में अपनी संपत्ति 'अर्पित' की थी? या फिर ब्रिटेन ने उसे बलपूर्वक अथवा छल से प्राप्त किया? साथ ही भारतीयों की त्वचा का गहरा रंग भी देखें (जो बर्तानिया के वर्ण से विपरीत है) जो उस समय गोरे लोगों की काले वर्ण वाले 'स्थानिकों' पर श्रेष्ठता की धारणा को दर्शाता है।

परिवर्तनशील परिदृश्य

विस्तारित हो रहे उपनिवेशवादी शासन ने भारतीय जीवन के प्राय: प्रत्येक पक्ष को प्रभावित किया क्योंकि शासक यह मानते थे कि भारत को उनके 'श्रेष्ठ' विचारों के अनुसार पुनः आकार दिया जाना चाहिए। आइए, संक्षेप में उन प्रभावों में से कुछ पर दृष्टि डालें।

© NCERT not to be republished

भारत के स्वदेशी उद्योगों का पतन

उभरा हुआ (एंबोस्ड) वस्त्रों पर इस प्रकार की आकृति अंकित होना जो उभरी हुई स्पष्ट दिखाई दे।

18वीं शताब्दी से पूर्व, भारत अपने उत्पादन-कौशल के लिए प्रसिद्ध था, विशेषकर वस्त्रों के क्षेत्र में— सूती, रेशमी, ऊनी, पटसन (जूट), भांग और नारियल रेशा (कोयर) इसके मुख्य प्रकार थे। विशेषकर भारतीय सूती कपड़ा, जिन पर समृद्ध और बारीक डिजाइन, चमकीले रंग और अत्यंत पतली मलमल से लेकर गहराई से **उभरे हुए** वस्त्र तक के विभिन्न प्रकार, विश्व के अनेक भागों में अत्यधिक माँग में थे।

आइए पता लगाएँ

क्या आप ऊपर दिए गए सभी शब्दों को समझते हैं जो भारतीय वस्त्रों का वर्णन करते हैं? यदि नहीं, तो चार या पाँच विद्यार्थियों के समूह बनाएँ और इन शब्दों की जानकारी प्राप्त करें, फिर अपने शिक्षक की सहायता से अपने निष्कर्षों की तुलना करें।

ब्रिटिश नीति ने भारतीय वस्त्रों पर ब्रिटेन में भारी कर लगाए, जबकि भारत को ब्रिटिश निर्मित वस्तुएँ अत्यंत कम करों के साथ स्वीकार करने को बाध्य किया गया। इसके अतिरिक्त, अब ब्रिटेन ने समुद्री व्यापार तथा विनिमय दरों पर नियंत्रण स्थापित कर लिया जिससे भारतीय व्यापारियों के लिए पहले की भाँति निर्यात करना अत्यंत कठिन हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत का वस्त्र उद्योग नष्ट हो गया। 19वीं शताब्दी में भारत का वस्त्र निर्यात तीव्रता से घटा, जबकि ब्रिटेन से भारत में आयात और भी तीव्रता से बढ़ा। कुशल कारीगरों के समुदाय जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने शिल्प में निपुण थे, निर्धनता में धकेल दिए गए और उन्हें अधिक कर वाले कृषि क्षेत्रों में जीविका के लिए लौटने को विवश होना पड़ा। 1834 में भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल विलियम बैंटिक ने कहा था, "सूती बुनकरों की अस्थियाँ भारत के मैदानों का विरंजन कर रही हैं।"

ऐसी ही स्थिति भारत के लोहा, स्टील, कागज एवं अन्य उत्पादों के लिए भी उत्पन्न हुई। उपनिवेशकालीन शासन के दौरान विश्व के सकल घरेलू उत्पाद में भारत की भागीदारी निरंतर घटती रही और स्वतंत्रता के समय यह घटकर मात्र 5 प्रतिशत रह गई। दो शताब्दियों से भी कम समय में संसार के सबसे समृद्ध भूभागों में से एक, सबसे निर्धन देशों में से एक बन गया।

परंपरागत शासन संरचनाओं का विघटन

ब्रिटिश उपनिवेशीकरण से पूर्व भारत में स्थानीय स्वशासन की सुव्यवस्थित प्रणालियाँ विद्यमान थीं। ग्राम पंचायतें समुदाय के कार्यों का संचालन करती थीं, विवादों का निवारण

© NCERT not to be republished

करती थीं तथा सिंचाई, सड़क निर्माण आदि जैसे सार्वजनिक कार्यों का आयोजन करती थीं। क्षेत्रीय राज्य दशकों और शताब्दियों में विकसित जटिल प्रशासनिक संरचनाएँ बनाए रखते थे, जो स्थानीय आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुरूप ढली हुई थीं। 1830 के दशक में कार्यवाहक गवर्नर-जनरल चार्ल्स मेटकाफ ने इस प्रणाली और उसकी कार्यक्षमता का वर्णन इस महत्वपूर्ण कथन में किया था—

> "ग्राम समुदाय लघु गणराज्यों के सदृश हैं, जिनमें प्राय: वह सब कुछ होता है जिसकी उन्हें आवश्यकता होती है। वे वहाँ बने रहते हैं जहाँ अन्य सब कुछ नष्ट हो जाता है। एक के बाद एक राजवंश समाप्त हो जाते हैं, क्रांति के पश्चात पुनः क्रांति होती है किंतु ग्राम समुदाय यथावत बना रहता है... ग्राम समुदायों की यह संगठित अवस्था, जहाँ प्रत्येक समुदाय अपने आप में एक लघु राज्य के रूप में कार्य करता है, भारत की जनसंपदा के संरक्षण में किसी भी अन्य कारण की अपेक्षा अधिक सहायक रही है।"

ब्रिटिश शासन ने इन देशी शासन प्रणालियों को क्रमबद्ध रूप से नष्ट किया और इनके स्थान पर एक केंद्रीकृत नौकरशाही स्थापित की जिसका प्रमुख उद्देश्य कर-संग्रह और विधि-व्यवस्था बनाए रखना था, न कि जनहित को बढ़ावा देना। इस परिवर्तन ने समुदाय-आधारित निर्णय-निर्माण की शताब्दियों पुरानी व्यवस्थाओं को समाप्त कर दिया।

ब्रिटिश कानून-संहिताओं की स्थापना ने उन प्रथागत विधियों और परंपराओं की उपेक्षा की जो पीढ़ियों से भारतीय समुदायों को संचालित करती थीं। इसे आधुनिकता के रूप में प्रस्तुत किया गया, परंतु वास्तव में यह एक ऐसा विदेशी ढाँचा था जो भारत की आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं था और इसने सामान्य जन को न्यायिक व्यवस्था से विमुख कर दिया। न्यायालय महँगे, अधिक समय लेने और एक विदेशी भाषा में संचालित होने वाले बन गए।

भारतीय शिक्षा का रूपांतरण— 'भूरे अंग्रेज' तैयार करना

शिक्षा एक प्रभावशाली उपकरण बन गई जिसके द्वारा ऐसे भारतीयों का वर्ग निर्मित किया गया जो ब्रिटिश हितों की सेवा करे। पूर्ववर्ती शताब्दियों में भारत में विविध शिक्षण परंपराएँ थीं — पाठशालाएँ, मदरसे, विहार तथा विभिन्न प्रकार की शिष्य-प्रशिक्षण प्रणाली। इन संस्थानों द्वारा न केवल व्यावहारिक ज्ञान अपितु सांस्कृतिक मूल्यों और परंपराओं का भी प्रसारण होता था। यहाँ तक कि 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में ब्रिटिश प्रतिवेदनों में भारत में लाखों ग्राम्य विद्यालयों का उल्लेख मिलता है (उदाहरण के लिए, बंगाल और बिहार में 1830 तक लगभग 1,00,000 से 1,50,000 विद्यालय), "जहाँ युवा मूलनिवासियों को

not to be republished

अत्यंत कम व्यय में, परंतु अत्यंत सरल और प्रभावी ढंग से पढ़ना, लिखना तथा अंक गणित की शिक्षा दी जाती थी…”

1835 में भारत की शिक्षा के इतिहास में एक तीव्र मोड़ आया, जब ब्रिटिश इतिहासकार और राजनीतिज्ञ थॉमस बी. मैकॉले ने प्रसिद्ध **मिनिट ऑन इंडियन एजुकेशन** प्रस्तुत किया। यद्यपि इसमें उन्होंने स्वीकार किया कि उन्हें संस्कृत अथवा अरबी का कोई ज्ञान नहीं है, फिर भी उन्होंने यह विश्वास प्रकट किया कि यूरोपीय ज्ञान भारत की समस्त देशी साहित्य की अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ है— “मैंने किसी भी **प्राच्यवादी** को ऐसा नहीं पाया जो यह स्वीकार न करे कि एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की मात्र एक शेल्फ, भारत और अरब के संपूर्ण देशज साहित्य की तुलना में अधिक मूल्यवान है।” इसलिए, उनके अनुसार भारतीयों को ब्रिटिश शिक्षा की आवश्यकता थी, जिसका उद्देश्य एक ऐसे वर्ग का निर्माण करना था जो “रक्त और रंग से तो भारतीय हो परंतु स्वाद, विचार, नैतिकता और बुद्धि से अंग्रेज।”

प्राच्यवादी (ओरिएंटलिस्ट) अब एक प्रायः अप्रचलित शब्द, जिसका प्रयोग पश्चिम एशिया से लेकर सुदूर पूर्व तक के क्षेत्रों के विद्वानों के लिए होता था। भारत में प्राच्यवादी प्रायः संस्कृत, पाली, फारसी आदि भाषाओं के विद्वान होते थे (अब इन्हें ‘भारतविद्’ कहा जाता है)।

यद्यपि कुछ प्रमुख ब्रिटिश प्राच्यवादी यह तर्क देते रहे कि भारतीय विद्यार्थियों को उनकी अपनी भाषाओं में अध्ययन करने दिया जाना चाहिए, किंतु मैकॉले की नीति प्रभावी सिद्ध हुई। परिणामस्वरूप पारंपरिक भारतीय विद्यालय धीरे-धीरे विलुप्त हो गए। अंग्रेजी भाषा प्रतिष्ठा की भाषा बन गई क्योंकि यह औपनिवेशिक शासकों से जुड़ी हुई थी। इसने भारतीय समाज में अंग्रेजी शिक्षित अभिजनों और सामान्य जनों के बीच एक स्थायी विभाजन उत्पन्न कर दिया।

नवीन शिक्षा प्रणाली ने औपनिवेशिक शासन के अनेक उद्देश्यों की पूर्ति की। इससे भारतीय लिपिकों और कनिष्ठ कर्मचारियों का ऐसा वर्ग तैयार हुआ, जो प्रशासन में निचले स्तर की सेवाओं को ब्रिटिश कर्मचारियों की तुलना में अत्यंत न्यून व्यय पर निभा सके। साथ ही यह, यह प्रणाली पारंपरिक ज्ञान और अधिकार के स्रोतों को भी हाशिए पर ले गई जिससे पीढ़ियों तक भारतीय अपनी सांस्कृतिक विरासत से कटे रहे।

आइए विचार करें

मैकॉले द्वारा लिखे गए इस वाक्य— “एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की मात्र एक शेल्फ, भारत और अरब के संपूर्ण देशज साहित्य से अधिक मूल्यवान है” का वास्तविक अभिप्राय क्या था? और उन्होंने ऐसा क्यों चाहा कि भारतीय “स्वाद, विचार, नैतिकता और बुद्धि में अंग्रेज बन जाएँ”? इसका संबंध अध्याय के प्रारंभ में उल्लिखित ‘सभ्यकारी अभियान’ से किस प्रकार है? इन प्रश्नों पर कक्षा-चर्चा आयोजित करने हेतु अपने शिक्षक से अनुरोध करें।

© NCERT not to be republished

साम्राज्यवादी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आर्थिक संरचनाओं का पुनर्गठन

ब्रिटिशों ने भारत की अर्थव्यवस्था को एक आत्मनिर्भर कृषि-प्रणाली से परिवर्तित कर दिया, जिसमें हस्तशिल्प और विनिर्माण सहायक भूमिका निभाते थे। इसके स्थान पर उन्होंने ऐसी संरचना बनाई जो ब्रिटिश उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति करती थी और ब्रिटिश वस्तुओं के लिए बाजार बन गई थी। इस आर्थिक रूपांतरण के तकनीकी पक्षों में जाए बिना हम भारत में निर्मित विशाल रेल संजाल तंत्र का उदाहरण ले सकते हैं। इसे प्रायः उपनिवेशवाद का वरदान कहा जाता है। यद्यपि रेलमार्गों ने लोगों को एक-दूसरे के निकट लाने में भूमिका निभाई और भारत के आंतरिक बाजार को एकीकृत किया, परंतु इसका वास्तविक उद्देश्य कच्चे माल को आंतरिक क्षेत्रों से बंदरगाहों तक पहुँचाना तथा ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं को संपूर्ण भारत में वितरित करना था। रेलमार्गों का निर्धारण प्रायः विद्यमान व्यापार मार्गों की उपेक्षा करते हुए केवल उपनिवेशी आर्थिक हितों की पूर्ति हेतु

चित्र 4.15 — 1860 में मद्रास रेलवे (ब्रिटिश भारत में रेल नेटवर्क का संचालन करने वाली कंपनियों में से एक) का एक भाप इंजन

© NCERT not to be republished

किया गया था। एक अन्य उद्देश्य यह था कि सेना को उनकी छावनियों से शीघ्र ही किसी दूरवर्ती विद्रोह या युद्धस्थल तक पहुँचाया जा सके।

अतएव, भारत में रेलों का निर्माण औपनिवेशिक शासकों की ओर से दिया गया कोई उपहार नहीं था। इसका अधिकांश व्यय भारतीय कर-राजस्व से वहन किया गया अर्थात भारतवासियों ने ही ऐसी अधोसंरचना के लिए धन प्रदान किया जो मुख्यतया ब्रिटिश रणनीतिक एवं व्यापारिक हितों की पूर्ति करती थी, न कि जनसामान्य की आवश्यकताओं की। टेलीग्राफ नेटवर्क के विषय में भी यही बात कही जा सकती है।

यहाँ तक कि औपनिवेशिक शासन की प्रशासनिक लागत भी भारतीयों द्वारा वहन की जाती थी। प्रशासनिक ढाँचे, सैनिक छावनियाँ तथा ब्रिटिश अधिकारियों की भव्य जीवन-शैली— ये सब भारतीय कराधान से पोषित थे। संक्षेप में कहा जाए तो भारतवासियों ने अपने ही अधीनीकरण के लिए स्वयं धन उपलब्ध कराया।

प्रारंभिक प्रतिरोध आंदोलन— औपनिवेशिक प्राधिकार को चुनौती

भारत, ब्रिटिश के लिए संपदा, प्राकृतिक संसाधनों तथा मानव संसाधनों का इतना विशाल स्रोत था कि उन्होंने उसे "**ब्रिटिश साम्राज्य के मुकुट में मणि**" (द ज्युअल इन द क्राउन ऑफ द ब्रिटिश एंपायर) की संज्ञा दी और यह भी उद्घोषित किया कि भारत सदा के लिए ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बना रहेगा, "जिस पर सूर्य कभी अस्त नहीं होता।"

आइए विचार करें

"ब्रिटिश साम्राज्य पर सूर्य कभी अस्त नहीं होता"— इस वाक्य का अभिप्राय क्या है? क्या यह कथन उचित था? विचार करें।

तथापि, भारत पर ब्रिटिश अधिग्रहण के आरंभ से ही प्रतिरोध की चेष्टाएँ प्रकट होने लगीं, जो इस स्वयंभू 'अतिथि' को निष्कासित करने के लिए प्रयासरत रहीं। आइए, कुछ ऐसे ही आरंभिक प्रतिरोधों का संक्षिप्त अवलोकन करें परंतु पहले ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का मानचित्र (चित्र 4.16) सावधानीपूर्वक देख लें। लाल एवं गुलाबी रंग वाले क्षेत्र वे हैं जो प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश प्रशासन के अधीन थे, जबकि पीले क्षेत्र वे रियासतें हैं जिनका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। (काली रेखाएँ रेलमार्गों को दर्शाती हैं।)

© NCERT not to be republished

चित्र 4.16 — ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का मानचित्र, 1909

आइए पता लगाएँ

मानचित्र का निरीक्षण करें। वर्तमान भारत के मानचित्र की अपेक्षा सीमाओं तथा नामों में क्या मुख्य अंतर हैं?

© NCERT not to be republished

‘संन्यासी-फकीर विद्रोह’

संगठित प्रतिरोध के आरंभिक उदाहरणों में से एक, जिसे प्रायः ‘संन्यासी (या संन्यासी-फकीर) विद्रोह’ कहा जाता है, 1770 के भीषण अकाल के पश्चात बंगाल में आरंभ हुआ। संन्यासी (हिंदू तपस्वी) एवं फकीर (मुस्लिम दरवेश) जो परंपरागत रूप से तीर्थ यात्रा एवं परोपकार हेतु स्वतंत्र रूप से भ्रमण करते थे, को ईस्ट इंडिया कंपनी की नीतियों, विशेषत: नूतन भूमि एवं कर-प्रणालियों के कारण प्रतिबंधों का सामना करना पड़ा। यद्यपि इनके उद्देश्यों पर विवाद रहा है, किंतु अगले तीन दशकों तक उन्होंने ब्रिटिश कोषों तथा कर-संग्राहकों पर आक्रमण किए। ब्रिटिश शासन ने उन्हें ‘दस्यु’ घोषित किया, अनेक को मृत्युदंड दिया और अंततः अपनी श्रेष्ठ सैनिक शक्ति द्वारा उन्हें पराजित कर दिया। यह विद्रोह बंगाल के साहित्यकार बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास *आनंदमठ* (1882) की प्रेरणा बना। इसमें सम्मिलित ‘वंदे मातरम्’ गीत ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम को अनुप्राणित किया और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात यह राष्ट्रगीत घोषित हुआ।

जनजातीय विद्रोह

ब्रिटिश शासन ने जब वनों एवं पर्वतीय क्षेत्रों में हस्तक्षेप कर उनकी पारंपरिक जीवन-शैली को बाधित किया, तब भारत की जनजातियाँ विशेष संकट में आ गईं। उन्हें ‘आदिम’ कहकर वनों, वनोपजों एवं भूमि से वंचित किया गया, नकद कर लगाए गए और उन्हें ऋण-जाल में फँसाया गया। उनकी पंचायतों को समाप्त कर अंग्रेजी न्याय व्यवस्था लागू की गई और जनजातियों को ‘सभ्य बनाने’ तथा उन्हें ईसाई धर्म में धर्मांतरित करने के लिए मिशनरियों को प्रोत्साहित किया गया। यहाँ तक कि एक औपनिवेशिक विधि द्वारा सैकड़ों जनजातियों को ‘अपराधी जनजाति’ घोषित कर उनके साथ दशकों तक अन्याय हुआ।

उपरोक्त दुर्व्यवहारों के कारण कुछ जनजातियों ने औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस तरह की पहली घटनाओं में से एक है, **कोल विद्रोह** (1831–1832) जिसमें छोटा नागपुर (झारखंड) क्षेत्र में जब ब्रिटिश शासन की भू-नीति ने मूल निवासियों की उपेक्षा कर बाहरी लोगों को लाभान्वित किया, कोल जनजातियों (जैसे — मुंडा, उरांव) ने विद्रोह करते हुए अस्थायी रूप से कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया था। किंतु ब्रिटिश सेना ने उन्हें पराजित कर दिया। **संथाल विद्रोह** (1855–1856) झारखंड, बिहार एवं पश्चिम बंगाल के कुछ भागों में हुआ एक व्यापक विद्रोह था। सिद्धू और कान्हू मुर्मू बंधुओं के नेतृत्व में संथाल जनजातियों ने साहूकारों एवं जमींदारों के विरुद्ध विद्रोह किया, जो ब्रिटिश समर्थन से उनके पूर्वजों की भूमि छीन रहे थे।

© NCERT not to be republished

उन्होंने अपने शासन की घोषणा की और 'रक्त की अंतिम बूँद तक युद्ध' का संकल्प लिया। ब्रिटिश प्रतिक्रिया निर्मम थी। कुछ आरंभिक क्षति के उपरांत उन्होंने गाँवों को जला दिया, हजारों संथालों की हत्या की गई और अंततः विद्रोही नेतृत्व को भी मार डाला गया। फिर भी, यह साहसी विद्रोह अन्य जनजातियों के लिए औपनिवेशिक प्रतिरोध की प्रेरणा बना।

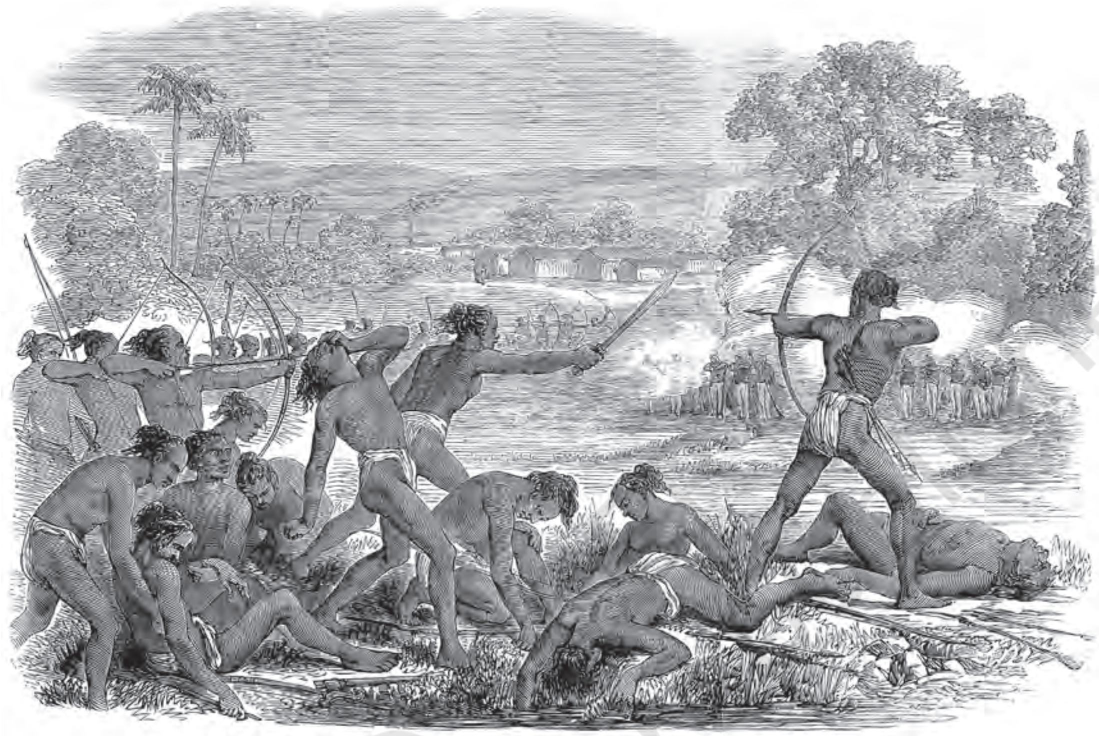

चित्र 4.17 — इलस्ट्रेटेड लंदन न्यूज में 1856 का एक रेखाचित्र, जिसमें संथाल विद्रोहियों और बंदूकधारी सिपाहियों के बीच असमान टकराव को दर्शाया गया है।

आइए पता लगाएँ

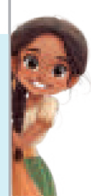

चित्र 4.17 में कलाकार की कल्पना से 1856 में चित्रित संथालों के वर्ण, वस्त्र एवं अस्त्रों को ध्यान से देखें और यह अनुमान लगाएँ कि ब्रिटेन की सामान्य जनता में यह चित्र किस प्रकार की धारणा उत्पन्न करता रहा होगा।

आर्थिक शोषण के विरुद्ध कृषकों के विद्रोह

अकालों के अतिरिक्त भी, कृषक अन्यायपूर्ण ब्रिटिश कर-प्रणाली से पीड़ित थे तथा प्रायः अपनी भूमि जमींदारों और साहूकारों को हार जाते थे। **नील विद्रोह** (1859–1862) इस शोषण को दर्शाता है। बंगाल के उत्तरी भागों में यूरोपीय नील उत्पादकों ने किसानों को

not to be republished ©

खाद्यान्न फसलों के स्थान पर नील बोने को विवश किया, जिसकी यूरोप में बहुत माँग थी। कृषकों के अतिरिक्त खेत-मालिक एवं व्यापारी, सभी लाभार्थी थे। अत्यल्प पारिश्रमिक के कारण कृषकों को ऋण-गुलामी झेलनी पड़ी। जब उन्होंने नील की खेती करने से मना किया, तब उन्हें कारावास, अत्याचार तथा संपत्ति की हानि सहनी पड़ी। किसानों का विद्रोह मुख्यत: उन खेत-मालिकों के विरुद्ध था, जिन्होंने भाड़े के सैनिकों द्वारा किसानों पर हमला किया। किंतु शिक्षित बंगालियों एवं प्रेस का समर्थन मिलने पर ब्रिटिश प्रशासन को कुछ दमनकारी उपायों को हटाना पड़ा।

आइए पता लगाएँ

नील एक प्राकृतिक गहरा नीला रंग है, जो वस्त्र रंगने में प्रयोग होता है। क्या आप ऐसे अन्य पारंपरिक प्राकृतिक रंगों को जानते हैं, जिनका उपयोग भारत में वस्त्र रंगने के लिए किया जाता रहा है?

भारतीय उपमहाद्वीप में ऐसे और भी उल्लेखनीय विद्रोह हुए। ये विद्रोह और ब्रिटिश शासन की अन्य नीतियाँ, जिनका उल्लेख पहले हो चुका है, 19वीं शताब्दी के सबसे महान विद्रोह का कारण बनीं। इसका विवरण हम अब देखेंगे।

विद्रोह (म्यूटिनी) इस संदर्भ में विद्रोह का तात्पर्य सैनिकों या नौसेना के नाविकों द्वारा अपने अधिकारियों के विरुद्ध की गई बगावत से है।

1857 का महान विद्रोह

ब्रिटिश शासन ने इस ऐतिहासिक घटना को 'सिपाही विद्रोह' (सिपॉय म्यूटिनी) कहा। स्मरण रहे कि 'सिपाही' ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में भर्ती भारतीय सैनिक थे जबकि उनके अधिकारी प्राय: सभी ब्रिटिश थे। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात इतिहासकारों ने 'सिपाही **विद्रोह**' संज्ञा को अस्वीकार कर इसके स्थान पर अन्य संज्ञाओं का प्रयोग किया। अनेक विद्वानों के अनुसार हम इसे '1857 का महान विद्रोह' कहेंगे। परंतु वास्तव में क्या घटित हुआ?

आइए पता लगाएँ

आपके अनुसार स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात 'सिपाही विद्रोह' संज्ञा को क्यों अस्वीकार किया गया? एक अनुच्छेद में कारण लिखिए।

© NCERT not to be republished

चित्र 4.18 — मेरठ में सिपाहियों के विद्रोह का काल्पनिक चित्रण (इलस्ट्रेटेड लंदन न्यूज, 1857)

1857 के इस महान विद्रोह से बहुत पहले ही सिपाहियों के बीच गहरा असंतोष उत्पन्न हो चुका था। इसका प्रथम संकेत 1806 के तथाकथित 'वेल्लोर विद्रोह' में प्रकट हुआ। यह तब फूट पड़ा जब ब्रिटिश शासन ने वर्दी संबंधी नए नियम लागू किए, जो हिंदू एवं मुस्लिम सिपाहियों की धार्मिक मान्यताओं का उल्लंघन करते थे। उदाहरण के लिए, ललाट पर धार्मिक चिह्न अंकित करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया और दाढ़ी मुँड़वाना अनिवार्य कर दिया गया। सिपाहियों ने वेल्लोर का किला (तमिलनाडु) अपने अधिकार में ले लिया और अनेक ब्रिटिश अधिकारियों एवं सैनिकों की हत्या कर दी। किंतु ब्रिटिशों ने विद्रोह का दमन कर सैकड़ों सिपाहियों को मार डाला या मृत्युदंड दिया।

अधिकांश सिपाही कृषक परिवारों से आते थे, जो भूमिकर संबंधी ब्रिटिश नीतियों से अत्यंत पीड़ित थे। वर्षों की निराशा के उपरांत 1857 में उत्तर एवं मध्य भारत में यह जनप्रवाद फैल गया कि नई राइफल की कारतूसों पर गाय और सूअर की चर्बी लगी होती है। इससे हिंदू एवं मुस्लिम सिपाहियों की धार्मिक भावनाएँ आहत हुईं। बैरकपुर (पश्चिम बंगाल) में सिपाही मंगल पांडेय ने ब्रिटिश अधिकारियों पर आक्रमण कर दिया। उनकी फाँसी ने सिपाहियों में असंतोष और भी बढ़ा दिया। मेरठ (उत्तर प्रदेश) में सिपाहियों ने

अपने ब्रिटिश अधिकारियों की हत्या कर दी और दिल्ली की ओर कूच किया, जहाँ उन्होंने वृद्ध किंतु राजनैतिक रूप से शक्तिहीन मुगल सम्राट बहादुर शाह ज़फ़र को अपना नेता घोषित कर दिया (उनका 'साम्राज्य' दिल्ली के एक लघु क्षेत्र तक सीमित था)। यद्यपि वास्तविक निर्णय सिपाही नेताओं द्वारा लिए जा रहे थे। यह विद्रोह शीघ्र ही उत्तर एवं मध्य भारत में फैल गया। सिपाहियों ने कानपुर, लखनऊ और झाँसी जैसे महत्वपूर्ण नगरों पर अधिकार कर लिया। कानपुर में विद्रोही सेनापति नाना साहेब ने प्रारंभ में ब्रिटिश नागरिकों को सुरक्षित मार्ग देने का वचन दिया, परंतु बाद में 200 से अधिक ब्रिटिश पुरुषों, महिलाओं और बच्चों की हत्या कर दी— इस घटना के कारण आज भी विवादित हैं।

ब्रिटिश प्रतिक्रिया अत्यंत क्रूर थी, जिसका प्रारंभ सितंबर 1857 में दिल्ली को पुनः अधीन करने से हुआ। वहाँ ब्रिटिश सेना ने घर-घर जाकर नरसंहार किया। कानपुर में सामूहिक मृत्युदंड दिए गए जिससे जनसाधारण में भय व्याप्त हो। एक लंबे दंडात्मक अभियान में उन्होंने गाँवों को जला दिया, फसलें नष्ट कर दीं, जिससे असंख्य लोगों की मृत्यु हुई। इन मृतकों की संख्या विद्रोहियों के हाथों हुई हत्याओं से कहीं अधिक थी।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार वीर नेतृत्व के होते भी विद्रोह असफल रहा क्योंकि सिपाहियों में एकता एवं सुसंगत रणनीति का अभाव था।

यह विद्रोह भले ही विफल रहा किंतु यह एक ऐतिहासिक मोड़ सिद्ध हुआ। इसने विचार का बीज बोया कि विदेशी शासन अस्वीकार्य है। यही बीज अन्य विधियों के साथ बढ़कर 20वीं शताब्दी के आरंभ में पूर्ण स्वतंत्रता के संघर्ष में परिणत हुआ। इसी बीच, 1858 में ब्रिटिश राजसत्ता ने ईस्ट इंडिया कंपनी से भारत का शासन अपने अधीन ले लिया और इसके साथ ही ब्रिटिश राज का आरंभ हुआ। ब्रिटिश नीतियाँ अब आक्रामक विस्तार की अपेक्षा नियंत्रण को सुदृढ़ करने पर केंद्रित हो गईं। भारतीय सेना का पुनर्गठन इस प्रकार किया गया कि भविष्य में एकीकृत विद्रोह की संभावना न रहे।

भारत में यूरोपीय उपनिवेशवाद की विरासत

भारत पर यूरोपीय (मुख्यत: ब्रिटिश) विजय और शासन किसी भी प्रकार से 'सभ्यकारी अभियान' नहीं था, क्योंकि भारत की अपनी सभ्यता यूरोप से कहीं प्राचीन थी। यह शासन अधीनता और शोषण की नियमित व्यवस्था थी, जिसमें आवश्यकता पड़ने पर क्रूर दमन किया जाता था। केवल कुछ सीमित भारतीय अभिजनों ने ब्रिटिश शासन को स्वीकार्य माना; शेष भारतवासियों को उपनिवेशवाद से पीड़ित विश्व के अन्य उपनिवेशित क्षेत्रों की भाँति अन्याय, उत्पीड़न, हिंसा और विस्थापन सहना पड़ा।

© NCERT not to be republished

दो वीरांगनाएँ

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अपने राज्य को ब्रिटिश आधिपत्य से बचाने के लिए वीरतापूर्वक लड़ाई लड़ी। नाना साहेब के सैन्य सलाहकार मराठा तात्या (या तांत्या) टोपे के सहयोग से रानी लक्ष्मीबाई ने घिरी हुई झाँसी से निकलकर ग्वालियर का दुर्ग जीत लिया और वहाँ का कोष तथा अस्त्रागार अपने अधिकार में ले लिया। वे 18 जून 1858 को रणभूमि में वीरगति को प्राप्त हुईं। झाँसी पर आक्रमण का नेतृत्व करने वाले ब्रिटिश सेनापति ने लिखा था कि रानी "अपनी सुंदरता, बुद्धिमत्ता, धैर्य तथा अपने अधीनस्थों के प्रति उदारता के लिए उल्लेखनीय थीं। उनके उच्च पद के साथ ये गुण उन्हें सभी विद्रोही नेताओं में सर्वाधिक खतरनाक बनाते थे... वे विद्रोहियों में सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक वीर थीं।" तात्या टोपे ने संघर्ष को 1859 के प्रारंभ तक जारी रखा परंतु विश्वासघात द्वारा उन्हें पकड़कर ब्रिटिश को सौंप दिया गया जिन्होंने उन्हें फाँसी दे दी।

चित्र 4.19 — रानी लक्ष्मीबाई का एक लघु चित्र (1853 या उससे पहले का)

चित्र 4.20 — 1850 के दशक में बेगम हजरत महल के चित्र का विवरण

अवध की बेगम हजरत महल (उत्तर प्रदेश) ने भी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रबल प्रतिरोध किया, जब उनका राज्य ब्रिटिश शासन द्वारा अधिग्रहित कर लिया गया। 1857 के विद्रोह के समय उन्होंने विद्रोहियों का साथ दिया और ब्रिटिश शासन द्वारा लखनऊ पर पुनः अधिकार के प्रयास के विरुद्ध नगर की रक्षा का नेतृत्व किया। ब्रिटिश शासन ने उन्हें आत्मसमर्पण करने पर सुरक्षित मार्ग देने का प्रस्ताव दिया, किंतु उन्होंने इसे स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया। अंततः उन्हें समीपवर्ती नेपाल में शरण लेनी पड़ी। नवंबर 1858 में ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा-पत्र जारी कर ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन का अंत कर दिया। इस घोषणा में धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न करने और प्रशासन में भारतीयों की अधिक भागीदारी का वचन दिया गया। इसके प्रत्युत्तर में बेगम हजरत महल ने एक प्रतिघोषणा जारी की जिसमें उन्होंने भारतीयों को चेतावनी दी कि वे इन वचनों पर विश्वास न करें क्योंकि "अंग्रेजों की सदा यह रीति रही है कि वे बड़ा या छोटा कोई भी दोष कभी क्षमा नहीं करते।"

© NCERT not to be republished

उसी समय इस औपनिवेशिक शासन के कुछ अनपेक्षित परिणाम भी हुए। इसने भारत को विश्व से और विश्व को भारत से जोड़ा (या पुनः जोड़ा)। ब्रिटिश शासन (और कुछ हद तक फ्रांसीसियों) ने अपने अधिकार-क्षेत्रों के प्रत्येक पक्ष के बारे में व्यवस्थित रूप में विस्तार से लिखा। उन्होंने इस उपमहाद्वीप का गहन सर्वेक्षण किया और बड़ी विस्तृत जाति-सूचियाँ बनाईं। यद्यपि वे सूचियाँ त्रुटिपूर्ण थीं क्योंकि उसमें 'नस्ल' की अवैज्ञानिक किंतु प्रचलित अवधारणाओं का उपयोग किया गया था (आनुवंशिकी के अनुसार 'नस्लें' नहीं होतीं)। उन्होंने भारत के स्मारकों के दस्तावेज बनाए, उनकी कला और वास्तुकला का अध्ययन किया, कुछ खंडहरों को पुनर्स्थापित किया तथा पुरातत्वशास्त्र का आरंभ किया। किंतु इस प्रक्रिया में उन्होंने (तथा अन्य औपनिवेशिक शक्तियों ने) भारत से हजारों मूर्तियाँ, चित्र, रत्न, पांडुलिपियाँ एवं अन्य सांस्कृतिक धरोहरें चुरा लीं और यूरोपीय संग्रहालयों या निजी संग्रहों में भेज दिया गया। जहाँ यह भारतीय संस्कृति तथा विरासत की गंभीर क्षति थी, वहीं इसने यूरोपीय समाज में भारतीय कला की सराहना को भी प्रेरित किया। ऐसी सांस्कृतिक चोरी विश्व के सभी उपनिवेशों में हुई। वर्तमान समय में अनेक स्थानों पर इन सांस्कृतिक धरोहरों को उनके मूल देशों में वापस लाने के प्रयास हो रहे हैं।

आइए पता लगाएँ

- → "इसने भारत को विश्व से और विश्व को भारत से जोड़ा (या पुनः जोड़ा)" वाक्य में 'पुनः जोड़ा' क्यों सम्मिलित किया गया होगा? विचार करें।
- → कुछ लोग कहते हैं कि चोरी की गई सांस्कृतिक धरोहरें विदेशों में अधिक सुरक्षित रहीं। आपके अनुसार क्या इन्हें भारत वापस लाना उचित होगा? समूह में विचार करें।

यद्यपि ब्रिटिश विद्वान संस्कृत भाषा में निपुण होने वाले प्रथम यूरोपीय नहीं थे, तथापि उन्होंने संस्कृत ग्रंथों के यूरोपीय भाषा में अनुवाद करने का कार्य अवश्य आरंभ किया। तत्पश्चात फ्रांसीसी, जर्मन तथा अन्य यूरोपीय विद्वान भी इस पथ पर अग्रसर हुए। इस अध्ययन के पीछे विभिन्न प्रकार की प्रेरणाएँ थीं— कुछ विद्वान भारत की प्राचीन संस्कृति के वास्तविक जिज्ञासु अथवा प्रशंसक थे, जबकि अन्य का उद्देश्य यह था कि भारतीय भाषाओं एवं ग्रंथों के अध्ययन द्वारा ईसाई धर्म की श्रेष्ठता प्रदर्शित करना अधिक सरल होगा।

संस्कृत अध्ययन तथा ग्रंथों का यूरोप में प्रसार (तथा उसके पश्चात अन्य भारतीय भाषाओं का भी) एक प्रकार से 'नव-महाद्वीप की खोज' के तुल्य था, जैसा कि जर्मन दार्शनिक गेओर्ग हेगेल ने कहा। भारतीय ग्रंथों का प्रभाव यूरोपीय दार्शनिकों, साहित्यकारों,

© NCERT not to be republished

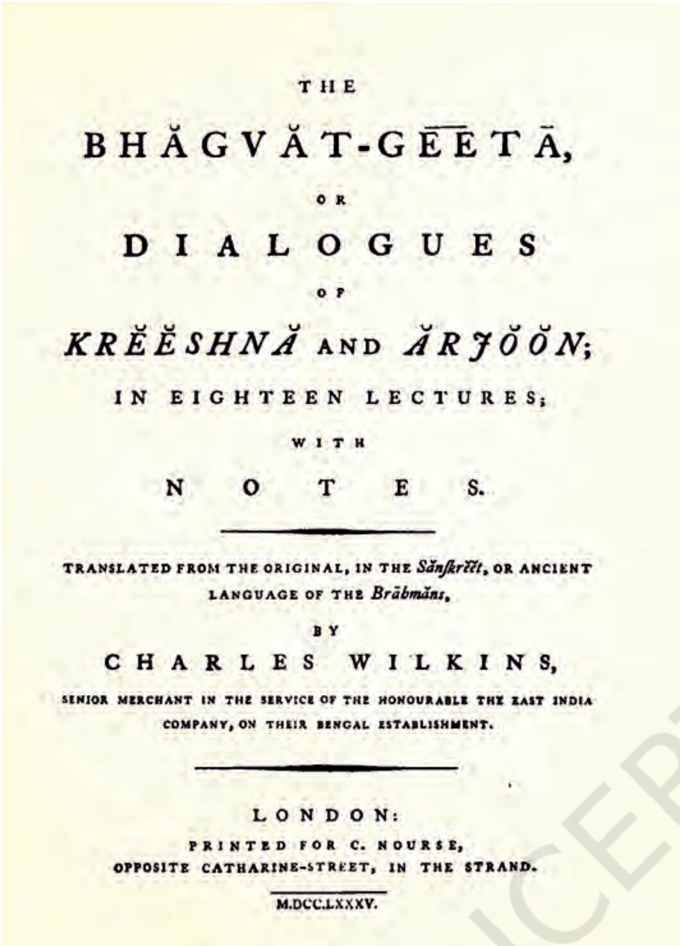
THE
BHĂGVĂT-GĒĒTĀ,
OR
DIALOGUES
OF
KRĔĔSHNĂ AND *ĂRJŎŎN*;
IN EIGHTEEN LECTURES;
WITH
NOTES.

TRANSLATED FROM THE ORIGINAL, IN THE *Sănskrĕĕt*, OR ANCIENT LANGUAGE OF THE *Brāhmāns*,
BY
CHARLES WILKINS,
SENIOR MERCHANT IN THE SERVICE OF THE HONOURABLE THE EAST INDIA COMPANY, ON THEIR BENGAL ESTABLISHMENT.

LONDON:
PRINTED FOR C. NOURSE,
OPPOSITE CATHARINE-STREET, IN THE STRAND.
M.DCC.LXXXV.

चित्र 4.21 — संस्कृत ग्रंथ — "भगवद्गीता अथवा कृष्ण-अर्जुन संवाद" (आधुनिक वर्तनी अनुसार) का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद (वर्ष 1785 में)। इसके अनुवादक चार्ल्स विल्किन्स थे।

कवियों, कलाकारों तथा कुछ अवसरों पर राज्यकर्ताओं पर भी पड़ा। इसका प्रभाव 19वीं शताब्दी में संयुक्त राज्य अमेरिका तक भी पहुँचा। यह स्मरण कराता है कि यद्यपि राजनैतिक प्रभुत्व की धारा एक दिशा में प्रवाहित होती है, परंतु सांस्कृतिक प्रभाव की धारा कभी-कभी विपरीत दिशा में भी प्रवाहित होती है।

आगे बढ़ने से पहले...

- पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी एवं ब्रिटिश भारत की महान समृद्धि से आकर्षित हुए। उन्होंने उपमहाद्वीप पर वर्चस्व हेतु परस्पर संघर्ष किया, जिसमें अंततः ब्रिटिश शासन को प्रधानता प्राप्त हुई।
- ब्रिटिशों की निर्दयी कर-नीति ने जनसामान्य को भारी कष्ट दिया, जिसके परिणामस्वरूप भीषण अकाल पड़े तथा लाखों लोगों की मृत्यु हुई। भारत के उद्योगों का योजनाबद्ध विनाश उसकी समृद्ध हस्तशिल्प परंपरा के लिए अत्यंत विनाशकारी हुआ।

© NCERT not to be republished

- धीरे-धीरे ब्रिटिश शासन ने अपने प्रशासनिक ढाँचे, विधिक प्रणाली तथा शैक्षिक संस्थानों को थोपकर भारतीय समाज पर पूर्ण औपनिवेशिक नियंत्रण स्थापित किया।
- पुर्तगालियों ने गोवा में धर्म परिवर्तन एवं सांस्कृतिक पुनर्रचना पर विशेष बल दिया, जिससे समाज में दीर्घकालिक विभाजन उत्पन्न हुआ। वहीं, फ्रांसीसियों की समायोजन नीति ने पुडुचेरी में एक छोटे से फ्रांसीसी भारतीय वर्ग का निर्माण किया।
- अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से अनेक विद्रोह आरंभ हुए, जिनमें 1857 के महान विद्रोह ने कुछ समय के लिए ब्रिटिश शासन को संकट में डाल दिया। यद्यपि इन अधिकांश विद्रोहों को क्रूरता से कुचल दिया गया।
- उन्नीसवीं शताब्दी में भारत की शास्त्रीय संस्कृति (विशेषत: अनुवादित संस्कृत ग्रंथों के माध्यम से) पश्चिम में पुनः प्रवाहित हुई, जिसका दीर्घकालीन प्रभाव पड़ा।

प्रश्न और क्रियाकलाप

1. उपनिवेशवाद क्या है? इस अध्याय या अपनी जानकारी के आधार पर तीन विभिन्न परिभाषाएँ दीजिए।
2. उपनिवेशवादी शासक प्रायः यह दावा करते थे कि उनका उद्देश्य शासित लोगों को 'सभ्य' बनाना था। इस अध्याय में प्राप्त प्रमाणों के आधार पर बताइए कि क्या भारत के संदर्भ में यह सत्य था? क्यों या क्यों नहीं?
3. भारत को उपनिवेश बनाने की ब्रिटिश नीति पूर्ववर्ती यूरोपीय शक्तियों जैसे पुर्तगाली या फ्रांसीसी से किस प्रकार भिन्न थी?
4. "भारतीयों ने अपने ही दमन का खर्च उठाया।" रेलवे एवं टेलीग्राफ जैसी ब्रिटिश आधारभूत संरचना परियोजनाओं के संदर्भ में इस कथन का क्या तात्पर्य है?
5. 'फूट डालो और राज करो' वाक्यांश का क्या अर्थ है? भारत में ब्रिटिश शासन द्वारा इसे किस प्रकार प्रयोग में लाया गया, उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

© NCERT not to be republished

6. भारतीय जीवन के किसी एक क्षेत्र को चुनिए, जैसे— कृषि, शिक्षा, व्यापार या ग्रामीण जीवन। उपनिवेशवादी शासन ने उसे किस प्रकार प्रभावित किया? क्या आज भी उन परिवर्तनों के कुछ चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं? अपने विचारों को एक लघु निबंध, कविता या चित्र के रूप में व्यक्त कीजिए।

7. कल्पना कीजिए कि आप 1857 में एक संवाददाता हैं। रानी लक्ष्मीबाई द्वारा झाँसी में किए गए प्रतिरोध पर एक संक्षिप्त समाचार विवरण लिखिए। यह भी दर्शाइए कि यह विद्रोह किस प्रकार आरंभ हुआ, फैला और समाप्त हुआ— मुख्य घटनाओं एवं नेताओं को रेखांकित करते हुए एक समय-रेखा या चित्रपट बनाइए।

8. कल्पना कीजिए यदि भारत कभी भी यूरोपीय शक्तियों का उपनिवेश नहीं बना होता, तब यह किस प्रकार अपने पथ पर विकसित हुआ होता? इस विषय पर लगभग 300 शब्दों की एक लघु कथा लिखिए।

9. भूमिका-अभिनय (रोल-प्ले)— एक ऐतिहासिक संवाद का मंचन कीजिए जिसमें एक ब्रिटिश अधिकारी एवं एक भारतीय व्यक्तित्व जैसे दादाभाई नौरोजी के मध्य ब्रिटिश उपनिवेशवाद पर चर्चा हो रही हो।

10. औपनिवेशिक काल में अपने राज्य या क्षेत्र के किसी स्थानीय प्रतिरोध आंदोलन (जनजातीय, कृषक या रियासती) का अन्वेषण कीजिए। एक विवरण या पोस्टर तैयार कीजिए, जिसमें निम्नलिखित बिंदु सम्मिलित हों—

- क्या इसका कोई विशिष्ट कारण था?
- आंदोलन का नेतृत्व किसने किया?
- उनकी माँगें क्या थीं?
- ब्रिटिश शासन की प्रतिक्रिया क्या थी?
- आज यह घटना किस प्रकार स्मरण की जाती है (जैसे— स्थानीय उत्सवों, गीतों, स्मारकों के माध्यम से)?

not to be republished © NCERT

मेरी अभिव्यक्ति

© NCERT
not to be republished

इस स्थान का उपयोग टिप्पणी और चित्रांकन हेतु कीजिए।